पुस्तक परिचय

जैन परम्परा के प्रथम कोटि के दार्शनिक तर्कपंचानन अभयदेवसूरि विरचित पच्चीस हजार श्लोक परिमाणयुक्त तत्त्वबोधविद्यायिनी टीका ग्रन्थ को आधार बनाकर रचित प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रमाण-लक्षण, प्रमाणभेद, प्रत्यक्ष-प्रमाण तथा परोक्ष-प्रमाण के अन्तर्गत स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान एवं आगम प्रमाण की विशद विवेचना की गई हैं।

जैन प्रमाणमीमांसा का समग्र विवेचन करने वाला यह ग्रन्थ न्यायवनसिंह अभयदेवसूरि के काल, कृतित्त्व, गच्छ परम्परा, गुरू, शिष्य आदि के सम्बन्ध उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर गम्भीर दृष्टि प्रस्तुत करता है। साथ ही इस ग्रन्थ में जैन प्रमाणमीमांसीय परम्परा के संवर्धक दार्शनिक उमास्वाति, मल्लवादी, क्षमात्रमण, जिनभद्रगणि, सुमति, पात्रस्वामी, हरिभद्रसूरि, भट्ट अकलङ्क आदि के प्रमाणमीमांसा सम्बन्धी अवदान को प्रमुखता के साथ रेखांकित किया गया है।

इस ग्रन्थ में जैन प्रमाणमीमांसा के विशद प्रस्तुतिकरण के साथ ही अन्य भारतीय दर्शनों के प्रमाणमीमांसीय मान्यताओं से सुव्यवस्थित तुलनात्मक एवं समालोचनात्मक विवेचन किया गया है।

ISBN : 978-93-87199-47-7

ISBN : 978-93-87199-47-7

मूल्य : 625.00 रुपये

जैन प्रमाणमीमांसा : एक तुलनात्मक अध्ययन
तत्त्वबोधविद्यायिनी के विशेष परिप्रेच्छ में

लेखिका

डॉ प्रतिमा सिंह

2020

कला प्रकाशन

बी. 33/33ए-1, न्यू साकेत कालोनी,
बी0 एच0 यू0, वाराणसी-5

प्रकाशक :

कला प्रकाशन

बी. 33/33 ए-1, न्यू साकेत कालोनी,
बी0 एच0 यू0, वाराणसी-5
दूरभाष : 0542-2310682
Email : kalaprakashanvns@yahoo.in

©लेखिका द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित
डॉ० प्रतिमा सिंह

प्रथम संस्करण : 2020
ISBN : 978-93-87199-47-7
मूल्य : 625.00 रुपये

कम्प्यूटर अक्षर संरचना :
मनीष कम्प्यूटर मीडिया
प्लाट नं0-26, रोहित नगर कालोनी,
बी0 एच0 यू0, वाराणसी-5
दूरभाष : 0542-2310682

मुद्रक :
मनीष प्रिंटिंग प्रेस
साकेत नगर कालोनी, बी.एच.यू.,
वाराणसी -221005

विषय-सूची

समर्पण	:		.....	*iii*
प्रस्तावना	:		.....	*v*
भूमिका	:		.....	*vi-viii*
प्रथम अध्याय	:	अभयदेवसूरि : जीवन परिचय एवं कृतित्व	.....	11–25
द्वितीय अध्याय	:	जैन न्याय दार्शनिक एवं उनकी रचनाएँ	.....	26–49
तृतीय अध्याय	:	तत्त्वबोधविधायिनी में प्रतिपादित प्रमाणमीमांसा	.....	50–67
चतुर्थ अध्याय	:	बौद्ध प्रमाणमीमांसा का परीक्षण	.....	68–129
पंचम अध्याय	:	न्याय–वैशेषिक एवं मीमांसा दर्शन का प्रमाणमीमांसीय परीक्षण	.....	130–211
उपसंहार	:		.....	212–220
संदर्भ ग्रंथ सूची	:		.....	221–232

★

जैन प्रमाणमीमांसा : एक तुलनात्मक अध्ययन तत्त्वबोधविद्यायिनी के विशेष परिप्रेच्छ में

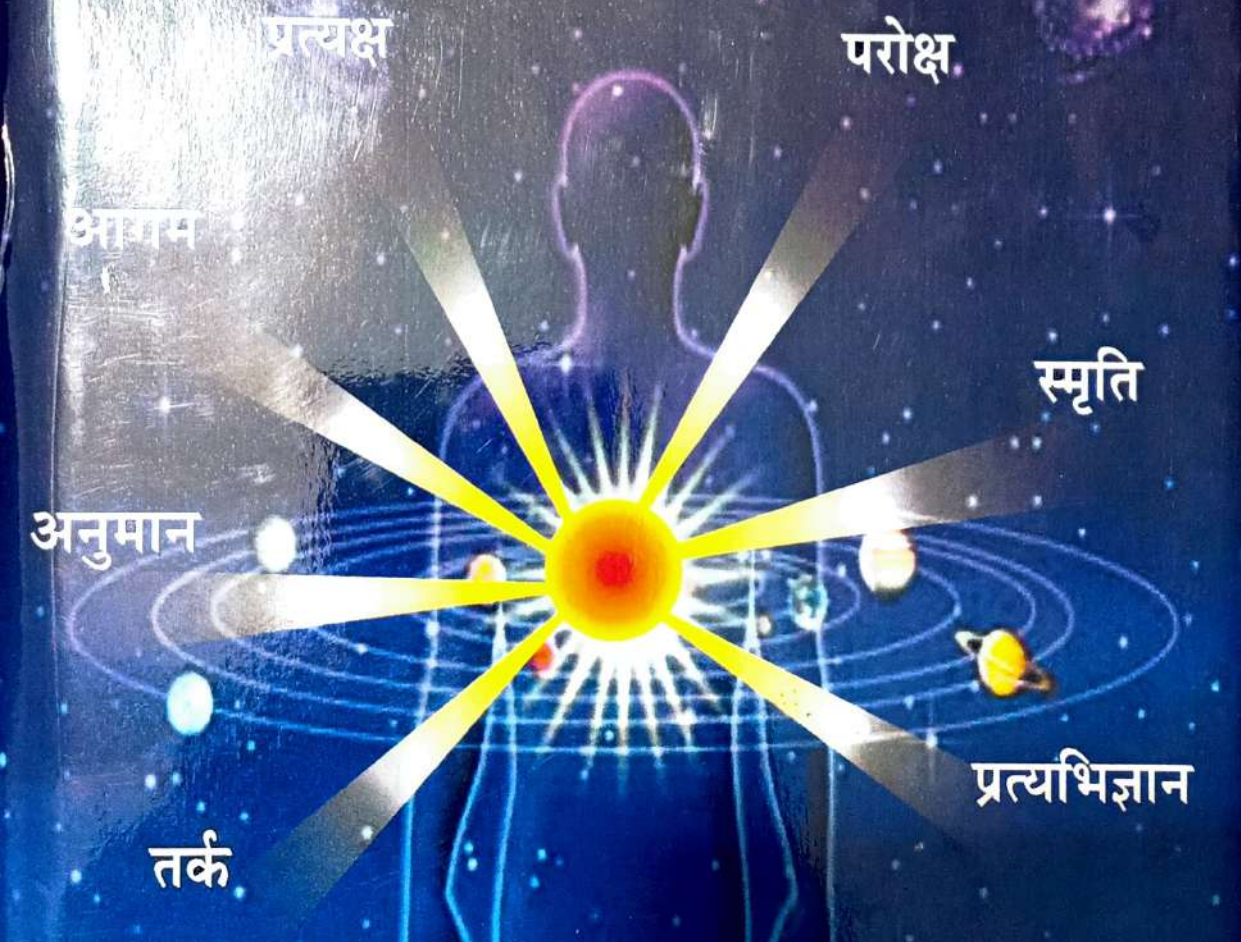

डॉ. प्रतिमा सिंह

पुस्तक परिचय

जैन परम्परा के प्रथम कोटि के दार्शनिक तर्कपंचानन अभयदेवसूरि विरचित पच्चीस हजार श्लोक परिमाणयुक्त तत्त्वबोधविद्यायिनी टीका ग्रन्थ को आधार बनाकर रचित प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रमाण-लक्षण, प्रमाणभेद, प्रत्यक्ष-प्रमाण तथा परोक्ष-प्रमाण के अन्तर्गत स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान एवं आगम प्रमाण की विशद विवेचना की गई हैं।

जैन प्रमाणमीमांसा का समग्र विवेचन करने वाला यह ग्रन्थ न्यायवनसिंह अभयदेवसूरि के काल, कृतित्त्व, गच्छ परम्परा, गुरू, शिष्य आदि के सम्बन्ध उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर गम्भीर दृष्टि प्रस्तुत करता है। साथ ही इस ग्रन्थ में जैन प्रमाणमीमांसीय परम्परा के संवर्धक दार्शनिक उमास्वाति, मल्लवादी, क्षमात्रमण, जिनभद्रगणि, सुमति, पात्रस्वामी, हरिभद्रसूरि, भट्ट अकलङ्क आदि के प्रमाणमीमांसा सम्बन्धी अवदान को प्रमुखता के साथ रेखांकित किया गया है।

इस ग्रन्थ में जैन प्रमाणमीमांसा के विशद प्रस्तुतिकरण के साथ ही अन्य भारतीय दर्शनों के प्रमाणमीमांसीय मान्यताओं से सुव्यवस्थित तुलनात्मक एवं समालोचनात्मक विवेचन किया गया है।

ISBN : 978-93-87199-47-7

ISBN : 978-93-87199-47-7

मूल्य : 625.00 रुपये

प्रकाशक :

कला प्रकाशन

बी. 33/33 ए-1, न्यू साकेत कालोनी,
बी0 एच0 यू0, वाराणसी-5
दूरभाष : 0542-2310682
Email : kalaprakashanvns@yahoo.in

©लेखिका द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित
डॉ० प्रतिमा सिंह

प्रथम संस्करण : 2020
ISBN : 978-93-87199-47-7
मूल्य : 625.00 रुपये

कम्प्यूटर अक्षर संरचना :
मनीष कम्प्यूटर मीडिया
प्लाट नं0-26, रोहित नगर कालोनी,
बी0 एच0 यू0, वाराणसी-5
दूरभाष : 0542-2310682

मुद्रक :
मनीष प्रिंटिंग प्रेस
साकेत नगर कालोनी, बी.एच.यू.,
वाराणसी -221005

जैन प्रमाणमीमांसा : एक तुलनात्मक अध्ययन
तत्त्वबोधविद्यायिनी के विशेष परिप्रेच्छ में

लेखिका
डॉ प्रतिमा सिंह

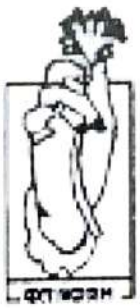

2020

कला प्रकाशन

बी. 33/33ए-1, न्यू साकेत कालोनी,
बी0 एच0 यू0, वाराणसी-5

विषय-सूची

समर्पण	:		.....	*iii*
प्रस्तावना	:		.....	*v*
भूमिका	:		.....	*vi-viii*
प्रथम अध्याय	:	अभयदेवसूरि : जीवन परिचय एवं कृतित्व	.....	11–25
द्वितीय अध्याय	:	जैन न्याय दार्शनिक एवं उनकी रचनाएँ	.....	26–49
तृतीय अध्याय	:	तत्त्वबोधविधायिनी में प्रतिपादित प्रमाणमीमांसा	.....	50–67
चतुर्थ अध्याय	:	बौद्ध प्रमाणमीमांसा का परीक्षण	.....	68–129
पंचम अध्याय	:	न्याय–वैशेषिक एवं मीमांसा दर्शन का प्रमाणमीमांसीय परीक्षण	.....	130–211
उपसंहार	:		.....	212–220
संदर्भ ग्रंथ सूची	:		.....	221–232

★

प्रथम अध्यायय

अभयदेवसूरि : जीवन परिचय एवं कृतित्व

अनादिकाल से संसार में निहित लौकिक तथा पारलौकिक सत्य को जानने उससे वैचारिक संवाद स्थापित करने की प्रबल इच्छा ने मनुष्य को सदैव चिंतन हेतु उद्वेलित किया है। दर्शनशास्त्र मनुष्य के इसी अनादिकालीन तत्त्व जिज्ञासा एवं उसे शांत करने हेतु अनवरत चिन्तन का परिणाम है। इस तत्त्व चिन्तन परम्परा का प्रमाणमीमांसा वह मेरुदण्ड है जिसके आधार पर समस्त दार्शनिक मूल तत्त्वों को जानने का प्रयास होता है।

'प्रमाणमीमांसा' शब्द प्रमाण से सम्बन्धित समस्त विषयों यथा प्रमाण का लक्षण, भेद, विषय, फल तथा प्रामाण्य आदि की चर्चा को स्वयं में समान रूप से समाहित किए हुए है। प्राचीन भारतीय दर्शन में प्रमाणमीमांसा के लिए आन्वीक्षिकी शब्द का प्रयोग होता रहा है। कौटिल्य ने आन्वीक्षिकी को 'समस्त विद्याओं का दीपक समस्त कर्मो का उपाय एवं समस्त धर्मों का आश्रय निरुपित किया है।' कौटिल्य के विवेचन से सहज ही यह द्योतित होता है कि प्राचीन काल से ही 'प्रमाण' तथा तत् सम्बन्धी मीमांसा की मानव जीवन तथा जगत में महत्वपूर्ण भूमिका को दृष्टिगत रखकर इसे अत्यन्त विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है।

'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'मा' धातु से निष्पन्न 'प्रमाण' शब्द प्रमेय पदार्थ को जानने में साधकतम कारण होता है। प्रमाणकरणं प्रमाणम, प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम् आदि इसके व्युत्पत्तिपरक लक्षण इसकी पृष्टि करते हैं। यद्यपि जानने के अनेक साधन होते हैं, किन्तु साधकतम अर्थात् करण को ही प्रमाण माना जाता है। जिसमें जो वस्तु रहती है उसमें उस वस्तु का ज्ञान यथार्थ ज्ञान कहलाता है, इस यथार्थ ज्ञान का कारण प्रमाण पद से अभिप्रेत है। प्रत्येक विषय जो प्रमाण से उत्पन्न होता है, प्रमेय पद से अभिहित होता है। इस प्रकार प्रमाण के विषय का नाम प्रमेय है।

सम्पूर्ण भारतीय दर्शन में इस प्रमेय पदार्थ को जानने के साधकतम कारण को प्रमाण माना जाता है। वह साधकतम कारण अर्थात प्रमाण क्या है

द्वितीय अध्याय

जैन न्याय दार्शनिक एवं उनकी रचनाएँ

मनुष्य अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता के कारण इस जगत में दृष्टा मात्र न होकर जिज्ञासु एवं प्रबुद्ध अन्वीक्षणकर्ता की भूमिका में रहा है। अनादिकाल से संसार में निहित लौकिक तथा पारलौकिक तत्त्व–ज्ञान की जिज्ञासा मनुष्य के स्वभाव का अंग रही है तथा प्रमाण उस तत्त्व अथवा प्रमेय को जानने का अनिवार्य साधन। अतः प्रमाण प्राचीन काल से मानुषिक चिंतन में रचा बसा रहा है। तत्व एवं प्रमेय के ज्ञान तथा मीमांसा हेतु प्रमाण एवं तत् सम्बन्धी विमर्श की अनिवार्यता को दृष्टिगत रखकर सम्पूर्ण भारतीय दर्शन परम्परा में प्रमाणमीमांसा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। भारतीय आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों में समान रूप से प्रमाणमीमांसीय विमर्श एवं साहित्य सर्जन को अपनी बौद्धिक एवं सर्जनात्मक निधि से समृद्ध किया गया है।

प्रमाण–विमर्श के क्षेत्र में जैन दर्शन का प्रवेश नैयायिक, मीमांसकों एवं बौद्धों के पश्चात हुआ। परवर्ती होने के फलस्वरूप जैन दार्शनिकों ने पक्ष तथा प्रतिपक्ष के सिद्धान्तों के गुण–दोषों का विशद् मूल्यांकन एवं परिमार्जन करके अपने प्रमाण–विचार को समृद्ध करने के साथ ही आवश्यकतानुसार अपनी पूर्व मान्यताओं को संशोधित एवं परिमार्जित किया। अतः जैन प्रमाण विचार स्थिर न रहकर सदैव गतिशील बना रहा। वह निरन्तर परिष्कृत, विकसित एवं समृद्ध होता रहा।

जैन प्रमाणमीमांसा को विकसित, परिष्कृत एवं प्रतिष्ठित करने में जैन आचार्यों की दीर्घकालीन परम्परा का अतुलनीय योगदान रहा है।

जैन दर्शन में प्रमाणमीमांसा पर प्रथम स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना आचार्य सिद्धसेन दिवाकर सूरि ने ईसा की चौथी शताब्दी में की है। इसके पूर्व जैन साहित्य में प्रमाणमीमांसा पर कोई स्वतंत्र ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता यद्यपि ज्ञानमीमांसा विषयक वाङ्मय आगमकाल से ही प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। जैन दर्शन साहित्य में आगम युग से प्रारम्भ होकर चौथी–पाँचवी शताब्दी तक ज्ञानमीमांसा की ही प्रधानता रही है तथा जैन प्रमाणमीमांसा के बीज इसी

तृतीय अध्याय

तत्त्वबोधविधायिनी में प्रतिपादित प्रमाणमीमांसा

अभयदेवसूरि सामान्य रूप से जैन दर्शन में प्रतिष्ठित प्रमाण-मीमांसीय सिद्धान्तों के अनुरूप ही अपने टीकाग्रन्थ तत्त्वबोधविधायिनी में प्रमाणादि परिभाषा, लक्षण तथा भेद का प्रतिपादन करते हैं। यद्यपि अभयदेवसूरि द्वारा तत्त्वबोधविधायिनी में की गई प्रमाणमीमांसीय चर्चा उनकी अपनी मौलिक विशेषता है क्योंकि मूल ग्रन्थ सन्मति तर्कप्रकरण में प्रमाणमीमांसा का उल्लेख नहीं किया गया है। अभयदेवसूरि तत्त्वबोधविधायिनी में जैन प्रमाणमीमांसा के अन्तर्गत प्रमाण लक्षण, प्रमाण भेद जिसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष, परोक्ष प्रमाण की व्याख्या करते हैं। इसके साथ ही वे जैन प्रमाणमीमांसा युग में प्रमाण रूप में स्वीकृत स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध आदि ज्ञानों को भी प्रमाण रूप में स्वीकार करते हैं।

(क) प्रमाण– अभयदेवसूरि ने जैन दर्शन में सामान्य रूप से प्रतिष्ठा प्राप्त प्रमाण–लक्षण को ही तत्त्वबोधविधायिनी में प्रमाण के लक्षण के रूप में निरुपित करते हुए कहा है– 'प्रमाणं स्वार्थनिर्णीतिस्वभावं ज्ञानम्' अर्थात् "स्व एवं अर्थ (पर) के निर्णायक स्वभाव वाला ज्ञान ही प्रमाण है।"[1] न्यायदर्शन द्वारा स्वीकृत प्रमाण लक्षण 'ज्ञान स्वयं अर्थात् स्व का निर्णायक (ग्राहक) नहीं होता तथा विज्ञानवादी बौद्ध के मत– 'ज्ञान पर का (वाह्यर्थ का) ग्राहक नहीं होता।[2] इन दोनों मतों के खण्डन के क्रम में अभयदेवसूरि ने अपने प्रमाण विषयक मत के निहितार्थ को और स्पष्टता के साथ उद्घाटित किया है। इस क्रम में वे कहते हैं कि प्रमाण स्वभावतः स्वग्राही,[3] अर्थ निर्णायक[4] अर्थात बाह्यर्थ सिद्धि कारक तथा निश्चयात्मक ज्ञानरूप[5] अर्थात् संशय, विपर्यय एवं अनध्यव–सायात्मकता से रहित होता है। टीकाकार का यह मत है कि ज्ञान

1. तत्त्वबोधविधायिनी टीकालङ्कृत, सन्मति–तर्कप्रकरण, खण्ड 4, गाथा 1, पृ. 65.
2. ननु चाऽत्रापि स्वग्रहणविधुरस्य ज्ञानस्य नैयायिकादिभिरभ्युगमाद् बौद्धेस्त्वर्थ–ग्रहणविधुरस्येति स्वार्थनिर्णीतिस्वभावताऽसिद्धा। पूर्वोक्त पृ. 65.
3. स्वनिर्णीतिस्वभावं ज्ञानमिति। पूर्वोक्त पृ. 82.
4. अर्थनिर्णीतिस्वभावता प्रमाणस्य। पूर्वोक्त, पृ. 119.
5. प्रमाणं स्वार्थनिर्णीतिस्वभावज्ञानमिति। पूर्वोक्त पृ. 216.

चतुर्थ अध्याय

बौद्ध प्रमाणमीमांसा का परीक्षण

इस ग्रन्थ में अभयदेवसूरि का प्रमुख लक्ष्य जैन परम्परा सम्मत प्रमाणमीमांसीय विचारों की प्रतिष्ठा करना है। किसी भी मत अथवा सिद्धान्त की प्रतिष्ठा हेतु एक सुदृढ़ आधार की आवश्यकता होती है। इस आधार निर्माण हेतु अभयदेव ने अपने टीकाग्रन्थ में जैन प्रतिपक्षी सभी सिद्धान्तों का विशद् खण्डन प्रस्तुत किया है। इस खण्डन के क्रम में उन्होंने चार्वाक, बौद्ध, सांख्य, न्याय–वैशेषिक, पूर्व मीमांसा के सभी प्रमाणमीमांसीय विचारों का निरसन किया है। प्रतिपक्षी के मतों की पूर्वपक्ष के रूप में सबल स्थापना तथा उसके सिद्धान्तों का निष्पक्षता एवं स्पष्टता के साथ प्रस्तुतिकरण अभयदेवसूरि की प्रमुख विशेषता है।

इस क्रम में अभयदेवसूरि द्वारा तत्त्वबोधविधायिनी में बौद्ध दर्शन के प्रमाण सम्बन्धी मतों के खण्डन को इस अध्याय में वर्णित किया गया है। जिसके अन्तर्गत अभयदेवसूरि कृत वैभाषिक बौद्धों के निराकारवाद तथा सौत्रन्तिक एवं विज्ञानवादियों के साकारवाद का खण्डन, विज्ञानवाद के ज्ञान को मात्र स्वसंविदित मानने तथा विज्ञानवाद एवं शून्यवाद द्वारा अर्थ की सत्ता न मानने का खण्डन, बौद्धों के प्रमाण–लक्षण, प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण के खण्डन को बतलाते हुए इस खण्डन के पश्चात् अभयदेव द्वारा स्थापित मतों तथा उसके दार्शनिक निहितार्थ को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

वैभाषिक के निराकारवाद तथा सौत्रान्तिक एवं विज्ञानवाद के साकारवाद का खण्डन–अभयदेवसूरि के मत में 'ज्ञान निराकारसाकार उभयरूप' होता है। अतः टीकाकार सर्वप्रथम वैभाषिकों के निराकारवाद का खण्डन तत्पश्चात् सौत्रान्तिक एवं विज्ञानवाद के साकारवाद का खण्डन करने के उपरान्त अपना मत प्रस्तुत करते हैं। टीकाकार वैभाषिकों के निराकारवाद मत के खण्डन हेतु सौत्रान्तिकों एवं विज्ञानवादियों द्वारा निराकारवाद के खण्डन हेतु किये गये तर्कों का ही उपयोग करते हैं। वैभाषिक निराकार बोध

पंचम अध्याय

न्याय-वैशेषिक एवं मीमांसा दर्शन का प्रमाणमीमांसीय परीक्षण

इस अध्याय में टीकाकार द्वारा कृत न्याय–वैशेषिक तथा मीमांसा दर्शन के प्रमाण सम्बन्धी मतों के खण्डन की विवेचना की गई है। जिसमें सर्वप्रथम अभयदेवसूरि द्वारा किए गए प्रमाण–लक्षण खण्डन (कारकसाकल्य के सन्दर्भ में), ज्ञान को मात्र परसंवेदी मानने का खण्डन एवं प्रत्यक्ष–प्रमाण का खण्डन तथा प्रत्यक्ष के खण्डन के क्रम में उनके द्वारा किए गये इन्द्रियों की प्राप्यकारिता–अप्राप्यकारिता तथा तिमिरभाववाद की चर्चा का विवेचन करते हुए तदुपरान्त् उनके इस वाद द्वारा जैन स्थापित मतों को स्पष्टता के साथ निरूपित करने का प्रयास किया गया है। मीमांसा मत मान्य प्रमाण लक्षण के खण्डन में अभयदेवसूरि द्वारा किए गए ज्ञातृव्यापार एवं अनधिगतार्थाधिगन्तव तथा अभाव प्रमाण के खण्डन का विवरण प्रस्तुत करते हुए तदुपरान्त् उनके द्वारा स्थापित मतों को प्रदर्शित किया है।

(क) न्याय–वैशेषिक मत के प्रमाण लक्षण का खण्डन–न्यायदर्शन के अनुसार 'अव्यभिचारी, असंदिग्ध, बोधाबोधरूपता आदि विशेषणों से विशिष्ट ऐसी अर्थोपलब्धिकारक सामग्री प्रमाण है[1] एवं तथाविध उपलब्धिजनकत्त्व ही प्रामाण्य माना गया है।

इसका खण्डन करते हुए वृत्तिकार कहते हैं कि प्रमाण का अर्थ है 'जो प्रमा के उद्भव में साधकतम हो' तथा यह साधकतमत्व सामग्री में संभव नहीं है क्योंकि सामग्री में अनेक कारक रहते हैं, उनमें किस प्रकार श्रेष्ठता का निर्णय होगा।[2] कार्य किसी एक कारक से नहीं अपितु अनेक कारकों

---

1. अव्यभिचारादिविशेषण विशिष्टार्थोपलाब्धिजनिका सामग्री प्रमाणम्। न्यायमंजरी, जयन्त भट्ट, पृ. 21.
2. अथ सामग्रयाः प्रमाणत्वे साधकतमत्वमनुपपन्नम् सामग्री ह्यनेककारकस्वभावा तस्य चानेककारकसमुदाये कस्यस्वरूपेणातिशयोवत्कुंशक्येत? तत्त्वबोधविधायिनी, टीकालङ्कृतसन्मति–तर्कप्रकरण, खण्ड–4,पृ. 49.

उपसंहार

जैन दर्शन साहित्य में प्रमाणमीमांसा पर प्रथम स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना आचार्य सिद्धसेन दिवाकर सूरि ने ईसा की चौथी–पाँचवीं शताब्दी में की। इसके पूर्व जैन साहित्य में प्रमाणमीमांसा पर कोई स्वतंत्र ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता। यद्यपि ज्ञानमीमांसा विषयक वाङ्मय आगम काल से ही प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। जैन दर्शन साहित्य में आगम युग से प्रारम्भ होकर चौथी–पाँचवी शताब्दी तक ज्ञानमीमांसा की ही प्रधानता रही है तथा जैन प्रमाणमीमांसा के बीज इसी ज्ञानमीमांसा में ही निहित थे।

जैन न्याय दार्शनिकों ने इसी आगम कालीन ज्ञानमीमांसा को ही अपना आधार बनाकर न्याययुगीन प्रमाणमीमांसीय विचारों को विकसित तथा व्यवस्थित किया। उमास्वाति, कुन्दकुन्द, सिद्धसेन, समन्तभद्र, मल्लवादी, क्षमाश्रमण आदि दार्शनिकों ने अपनी रचनाओं द्वारा आगमकालीन प्रमाणमीमांसीय विचारों को पुर्नव्यवस्थित एवं नियोजित करने का प्रयास किया। किन्तु जैन आगम कालीन प्रमाणमीमांसीय विचारधारा एवं जैनेतर दर्शनों में मान्य प्रमाण मान्यताओं के मध्य समन्वय स्थापित कर जैन न्याय को वृहद स्तर पर व्यवस्थित रूप प्रदान करने का कार्य सर्वप्रथम आचार्य अकलंक ने सातवीं–आठवीं शताब्दी में किया।

यद्यपि भारतीय दर्शन में प्रचलित प्रमाण विचार के क्षेत्र में जैनों का प्रवेश नैयायिकों, मीमांसकों तथा बौद्धों के पश्चात् हुआ। तथापि परवर्ती होने का लाभ यह हुआ कि जैनों ने पक्ष तथा प्रतिपक्ष के सिद्धान्तों के गुण–दोषों का सम्यक मूल्यांकन करने के पश्चात स्वयं को इस रूप में प्रस्तुत किया कि वह पक्ष तथा प्रतिपक्ष की तार्किक कमियों का परिमार्जन करते हुए, एक व्यापक तथा समन्वयात्मक प्रमाणमीमांसीय सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

जैन प्रमाणमीमांसा के इस क्रमबद्ध विकास को हम इस प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं। प्राचीन जैन आचार्यों ने आगम युगीन प्रमाण विचारों को अपना आधार बनाकर उन्हें ही पुर्नव्यवस्थित तथा निरूपित करने का

जैन प्रमाणमीमांसा : एक तुलनात्मक अध्ययन तत्त्वबोधविद्यायिनी के विशेष परिप्रेच्छ में

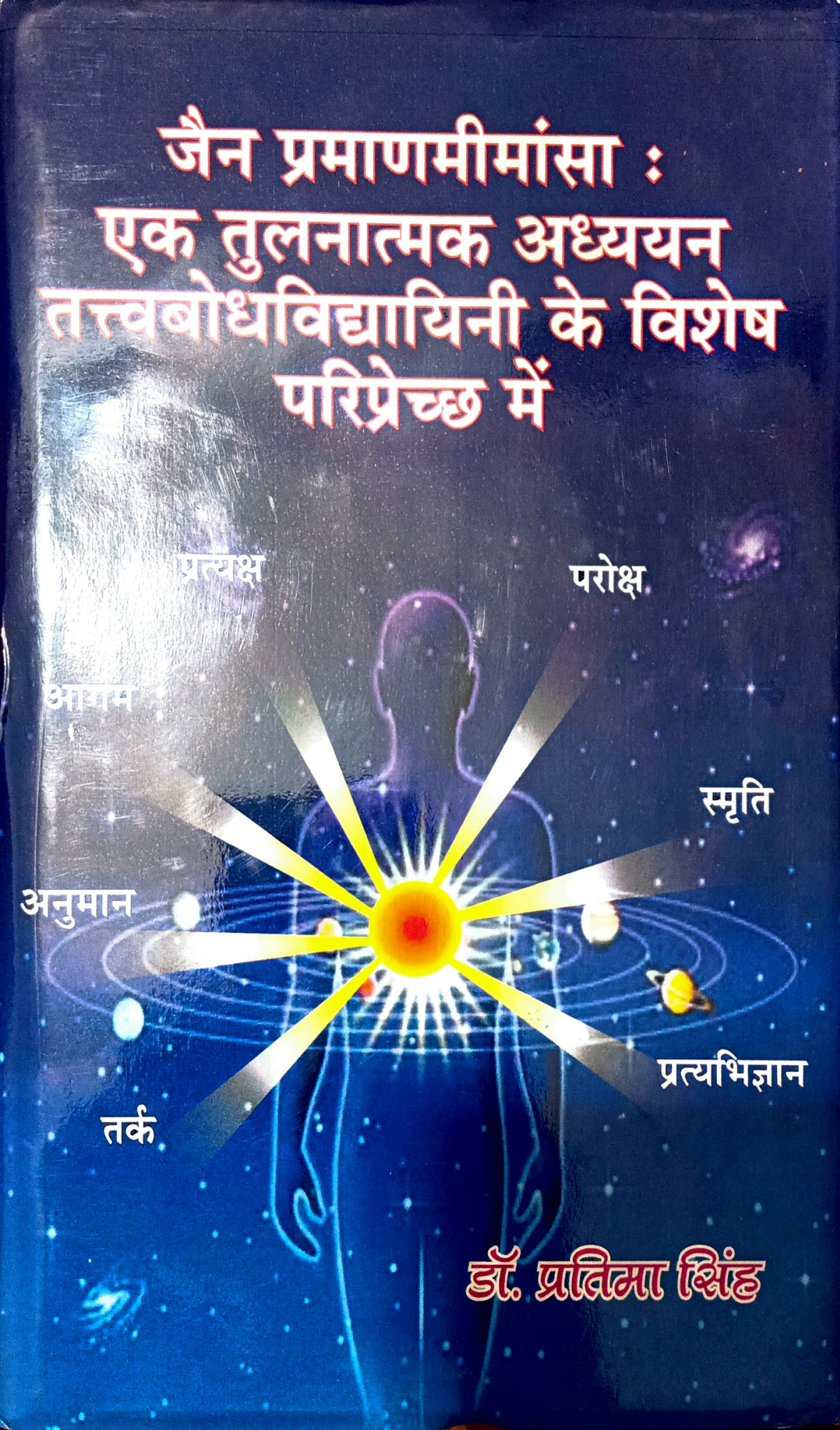

डॉ. प्रतिमा सिंह

सांख्यीय परम्परा का मूल : 'वियोग–योग'
डॉ० राजेश्वर सिंह 241

स्त्री–स्वातंत्र्य एवं गौतम बुद्ध
डॉ० अर्चना शर्मा 246

इतिहास और आल...
सुरभि त्रिपाठी 253

पातंजलयोग...
डॉ० सुरेन्द्र नाथ पा... 256

वेद चतुष्टय में आत्म...
रमांशकर प्रसाद 259

जैन आगम साहित्य में प्रमाण विचार
प्रतिमा सिंह 262

प्रलेस की स्थापना : आन्दोलन के उदय का अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ
पवन कुमार सिंह 265

महाकवि शूद्रक के रूपक में हास्य रस
किरन प्रकाश 268

राजगृह परिक्षेत्र का पूर्व उत्तरी कृष्ण मार्जित एवं उत्तरी कृष्ण मार्जित परिवेश, नालन्दा, बिहार 273
हर्ष रंजन कुमार

बीसलदेव रासों में कथानक रूढ़ियाँ
डॉ० द्युति मालिनी 278

गीता का नैतिक दर्शन एवं आधुनिक युग में इसकी प्रासंगिकता
सुशीला चन्द्रा 283

स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु महिला संगठनों का योगदान
शिप्रा नन्दन 288

मार्क्सवाद एवं अस्तित्ववादी सार्त्र : ...

सांख्यीय परम्परा का मूल : 'वियोग–योग' **241**
डॉ० राजेश्वर सिंह

स्त्री–स्वातंत्र्य एवं गौतम बुद्ध **246**
डॉ० अर्चना शर्मा

इतिहास और आलोचना **253**
सुरभि त्रिपाठी

पातंजलयोगः चित्तवृत्तियाँ **256**
डॉ० सुरेन्द्र नाथ पाल

वेद चतुष्टय में आत्मबल **259**
रमांशकर प्रसाद

जैन आगम साहित्य में प्रमाण विचार **262**
प्रतिमा सिंह

प्रलेस की स्थापना : आन्दोलन के उदय का अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ **265**
पवन कुमार सिंह

महाकवि शूद्रक के रूपक में हास्य रस **268**
किरन प्रकाश

राजगृह परिक्षेत्र का पूर्व उत्तरी कृष्ण मार्जित एवं उत्तरी कृष्ण मार्जित परिवेश, नालन्दा, बिहार **273**
हर्ष रंजन कुमार

बीसलदेव रासों में कथानक रूढियाँ **278**
डॉ० द्युति मालिनी

गीता का नैतिक दर्शन एवं आधुनिक युग में इसकी प्रासंगिकता **283**
सुशीला चन्द्रा

स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु महिला संगठनों का योगदान **288**
शिप्रा नन्दन

मार्क्सवाद एवं अस्तित्ववादी सार्त्र : तुलनात्मक अध्ययन **293**
डॉ० अमित यादव

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में जनक्रांति चेतना **298**
डॉ० संगीता चौधरी

अनुक्रमणिका

क्र०सं०	विषय-विवरण	पृष्ठ संख्या
	सम्पादकीय	I-III
1.	सत्य : गांधी जी की दृष्टि में • **प्रोफेसर शशि देवी सिंह**	1–4
2.	आज गांधी जी होते! • **प्रोफेसर विष्णुदत्त पाण्डेय**	5–16
3.	गांधी जी अध्यात्म एवं एकादश व्रत • **प्रोफेसर राजेश कुमार मिश्र**	17–24
4.	महात्मा गांधी और धर्म : सत्य तथा अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में • **डॉ0 नन्दिनी सिंह**	25–29
5.	गांधी जी का नैतिक मानववाद एवं ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त • **डॉ0 पिताम्बर दास**	30–40
6.	गांधी पर पश्चिम का प्रभाव एवं वैश्विक पटल पर गांधी का प्रभाव • **डॉ0 आशुतोष त्रिपाठी**	41–51
7.	गांधी–दर्शन में सत्य की अवधारणा • **डॉ. हरिदत्त त्रिपाठी**	52–59
8.	वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में अहिंसा एवं कर्मयोग पर आधारित ग्राम स्वराज्य की प्रासंगिकता • **डॉ0 प्रतिमा सिंह**	60–64
9.	गांधी जी के सर्वोदय विचार का वर्तमान युग में महत्व • **सोनम गुप्ता**	65–70
10.	महात्मा गांधी का दर्शन • **शशिभूषण प्रजापति**	71–75